अद्वैत वेदान्त का परम तत्व और कबीर का लयवाद एक तुलनात्मक दृष्टिकोंण

डॉ0 विद्यासागर उपाध्याय

अनेक स्थलों पर कबीर की भाषा अद्वैतवादियों के समान है और इसलिये कुछ लेखकों ने कबीर को अद्वैतवादी भी कहा है। (उदाहरणार्थ श्यामसुन्दर दास, पी.बड़थ्वाल)। पर कबीर और शंकर अद्वैत में बहुत अंतर है। यहॉ सारांश के रूप में कबीर और अद्वैत के बीच के अंतर को बताया जा सकता है–

1. शंकर का निर्गुण बह्म सभी प्रकार से गुण विवर्जित है, अर्थात् गुण–शून्य। इसके विपरीत कबीर के निर्गुण राम अपरिमित और असंख्य गुणों से परिपूर्ण है।[1]

2. निर्गुण ब्रह्म और निर्गुण राम, दोनों वर्णनातीत है। निर्गुण ब्रह्म इसलिये वर्णनातीत है क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार का गुण है ही नहीं और वर्णन करने का अर्थ है ब्रह्म के गुणों का उल्लेख करना। जब गुण हैं ही नहीं, तब गुणों का उल्लेख कैसे किया जायेगा?

निर्गुण राम इसलिये वर्णनातीत है क्योंकि वर्णन करने का अर्थ ही है कि मानव भाषा में राम की कथा को बाँधा जाय। पर मानव–भाषा ऐसी है कि इसके द्वारा वर्णित विषय बिना सीमित किये हुए भाषाबद्ध किया ही नहीं जा सकता है। इसलिये मानव–भाषा के संदर्भ में निर्गुण राम अकथ्य और वर्णनातीत है।

3. शंकर और कबीर दोनों के विचारों में उपासना का स्थान है। शंकर मानते हैं कि ईश्वरोपासना के आधार पर साधक मोक्ष प्राप्त कर सकता है।[2] कबीर भी पौराणिक कथाओं और देवताओं के प्रति भक्ति दिखाते हैं। पर कबीर बताते हैं कि सगुणोपासना साधनमात्र है और सीमित देवताओं के आधार पर मुक्ति नहीं प्राप्त की जा सकती है। अतः अंत में देवपूजा को नकारते हैं और इस रूप में कबीर अवतारवाद और मूर्तिपूजा के विरोधी हैं।

कबीर पौराणिक देवताओं और कथाओं में आस्था रखते हैं क्योकि निर्गुण राम ब्रह्मांड और व्यक्ति में संपूर्णतया व्याप्त हैं।[3] इसलिये राम पौराणिक देवताओं में भी व्याप्त कहे जा सकते हैं। फिर निर्गुण राम और साधक अंत में एक ही है जैसा 'जीवो ब्रह्मैव' सूत्र में बताया जाता है। इसके कारण कहा जा सकता है कि प्रत्येक जीव में ब्रह्म–प्राप्ति के प्रति जिज्ञासा और पिपासा रहती है और जब तक साधक उसे प्राप्त नहीं कर लेता है तब तक वह बेचैन और अशांत रहता है। पर अकथ्य राम को कैसे जाना जाय? केवल प्रतीक, मिथकात्मक कथाओं के ही द्वारा ये प्रतीक कैसे प्राप्त किये जा सकते हैं जिनके द्वारा साधक निर्गुण राम तक पहुँच सकता है? कबीर के अनुसार यह निर्गुण राम की कृपा पर निर्भर करता है कि वह किस रूप में अपने को अपने भक्त पर प्रगट करे।[4] शंकर इस स्थल पर कोई मत नहीं देते हैं, पर शास्त्र–सम्मत वे सभी देवी–देवताओं की स्तुति करते हैं, ताकि इन स्तुतियों के द्वारा चित्त विमल हो जाय और अन्तकरण तथा बुद्धि के विमल हो जाने पर ब्रह्म–ज्ञान उद्भासित हो सकता है।

अत' कबीर के अनुसार सगुण–निर्गुण अवियोज्य हैं, (क.ग्रं. पद 180)।इसलिये सगुण–द्वारा निर्गुण की प्राप्ति हो सकती है। शंकर इस संदर्भ में सगुण–निर्गुण ब्रह्म के बीच किसी प्रकार के तर्कसंगत संबंध की स्थापना नहीं कर पाये हैं।

दूसरे शब्दों में अद्वैतवादी और कुछ कबीर पंथी भी मानते हैं कि निर्गुण ब्रह्म ही परम लक्ष्य है, पर इसका साधन सगुण ब्रह्म है। पर सगुण साध्य नहीं हो सकता।[3] इसलिये डा. रामजी लाल 'सहायक' कबीर को अद्वैतवादी कहते हैं।[5] उनके अनुसार निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है।[6] फिर डा.रामजी लाल ने सगुण ब्रह्म को केवल व्यावहारिक रूप से सत्य कहा है, न कि पारमार्थिक दृष्टि से, पर सगुण–निर्गुण के संबंध को अवियोज्य नहीं कहा है। इसलिये सगुण–निर्गुण के बीच अद्वैतवादी संबंध तर्कसंगत नहीं है।

इसके विपरीत कबीर के अनुसार सगुण–निर्गुण अवियोज्य है (क.ग्र.पद 180)। कबीर किसी भी रूप को इसलिये निर्गुण राम का सही रूप नहीं समझते क्योंकि वह अपूर्ण होता है। पर कबीर के लिये सगुण निर्गुण राम का विरोधी तत्व नहीं है क्योंकि निर्गुण राम सभी गुणों में, धरती–आकाश और सीमित वस्तुओं में भी है। यही कारण है कि सगुण वह सीढ़ी है जिसके सहारे निर्गुण राम तक पहुॅचा जा सकता है।[7] फिर हजारीप्रसाद द्विवेदी बताते हैं कि निर्गुण राम का कोई स्वरूप और वर्ण नहीं हैं, पर यह बात इससे भी कहीं, अधिक ठीक है कि निर्गुण राम सभी रूपों में समाया हुआ है। इसलिये सभी रूप उसी के हैं।[8]

त्रिया पुरुष कछु कहल न जाई, सर्व रूप जग रहा समाई,
रूप अरूप जाय नहीं बोली,.....

अगर अपार रूप बहु, और अरूप बहु भाया।
बहुत ध्यान कै जोहिया, नहिं तेहि संख्या आय।
(बीजक–कबीर, रमैनी 77)

अर्थात् निर्गुण राम सब में व्याप्त है। वह स्त्री–पुरुष दोनों में है पर वह उनसे अतीत भी है क्योंकि निर्गुण अलिंग भी है और फिर वे पूर्णत्व में नर–नारी के रूप में भी है जो मानव के लिये अगम्य और अगोचर है। इसलिये वह रूप भी है और नहीं भी है, क्योंकि वे सभी रूपों में असीम और अनंत भाव में हैं। सभी रूपों की संख्या भी अनन्त है। दूसरे शब्दों में निर्गुण राम अनन्त गुणों से असीमित रीति से परिपूर्ण हैं।

4. जिस प्रकार अद्वैतवाद में सगुण–निर्गुण के बीच तर्कसंगत संबंध स्थापित नहीं हो पाया है, उसी प्रकार अद्वैतवाद में माया–विषयक चर्चा भी तर्कसंगत नहीं हो पायी है। शंकराचार्य के अनुसार माया 'अनिर्वचनीय' है। पर 'अनिर्वचनीय' का सीधा अर्थ यही है कि इसकी तर्कसंगत व्याख्या नहीं की जा सकती है।

कबीर और शंकर दोनों संसार को माया–विरचित मानते हैं। लेकिन, शंकर के विपरीत कबीर निर्गुण राम को सक्रिय समझते हैं जो इनके माया–सिद्धान्त से स्पष्ट हो जाता है। पर शंकर का निर्गुण ब्रह्म निष्क्रिय है। फिर शंकर का ब्रह्म केवल ज्ञान के द्वारा प्राप्त हो सकता है। इसके विपरीत कबीर प्रेमा–भक्ति पर भी बल देते हैं। यही कारण है कि कबीर शोषित वर्ग में अधिक प्रतिष्ठित हुए। शायद यह बताना अनावश्यक होगा कि कबीर के लिये किसी भी अवस्था में वैदिक कर्मों का विधान नहीं है। मनुशुद्धि के लिये वैदिक कर्मकाण्डों को प्रारम्भ में वैध बताया गया है। कबीर का सहज–योग सभी के लिये खुला द्वार है। कबीर और शंकर दोनों संसार को माया–विरचित मानते हैं। शंकर के अनुसार माया अनिर्वचनीय है और शंकर स्पष्ट नहीं करते हैं कि माया ब्रह्माश्रित है अथवा जीवाश्रित। शंकर के दर्शन में ये दोनों मत पाये जाते है। फिर इस माया को कैसे दूर किया जाय? शंकर के अनुसार माया वास्तव में अज्ञान है और इसे केवल ज्ञान के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। कबीर के अनुसार माया रघुनाथ की माया है। यह परम तत्व की लीला–शक्ति है। व्यक्ति इस माया के वश में होकर संसार–चक्र मे ग्रस्त रहता है। केवल रघुनाथ की दया से ही साधक इस माया को परास्त कर इसे अपनी चेरी बना सकता है। अतः निर्गुण राम की भक्ति माया–विजय अथवा मुक्ति का अनिवार्य मार्ग है। रघुनाथ की माया केवल रघुनाथ की दया से ही दूर हो सकती है।

अतः कबीर की सगुणोपासना और निर्गुण राम के स्वरूप से तर्कसंगत रूप से जुड़ी दिखती है। पर शंकर के अद्वैतवाद से सगुण और निर्गुण का संबंध ब्राह्य और आकस्मिक है।

5. पर हम पाते हैं कि अंत में शंकर और कबीर का परम तत्व अभेदमूलक हो जाता है। शंकर के निर्गुण ब्रह्म में किसी भी प्रकार का अन्तर तथा बाह्य भेद नहीं है। यही बात कबीर के मत में भी है। पर कबीर के निर्गुण राम में इसलिये भेद नहीं है कि वह निर्विशेष और परिपूर्ण है। वह सर्वगुणसमावेशी अपरिमित रहने के कारण सभी सीमित गुणों से अतीत है।

बार–बार कहा जाता है कि कबीर की धर्मभाषा प्रतीकात्मक है और प्रतीकों का काम है कि वह साधक में निर्गुण राम के प्रति उद्‌बोधन कर दे। इसलिये धर्मभाषा स्वरूप का भी चर्चा करनी चाहिये।

निर्गुण राम निरंजन, अलख और अगोचर है। इनका न कोई रूप, रेख और न मुद्रा है। आप वेद विवर्जित, भेद विवर्जित और ज्ञान–ध्यान विवर्जित हैं (क. ग्रं. पद 218–220)। तब इनकी चर्चा कैसे और किन शब्दों के द्वारा की जाय?

भारी कहौ त बहु डरौं, हलका कहूँ तौ झूठ,
मैं का जांणौं राम कूं, नैनू कबहूँ न दीठ।
दीठा है तो कस कहूँ, कह्या न को पतियाई,
हरि जैसा है तैसा रहा, तूं हरिषि गुण गाई।
वेद कुरानौं, गमि नहीं, कह्या न को पतियाई। (क.ग्रं. 8 साखी 1–3)
अबरन कौं का बरनिये, मौपे लख्या न जाइ,
अपना बाना बाहिया, कहि कहि थाके माइ। (क.ग्रं. 38 साखी 6)

तब क्या मूक रहा जाय? इस स्थिति में मूक रह जाना ही तर्कसंगत है। 'यतो वाचो निर्वतन्ते अप्राप्य मनसा सह,' वहाँ भाषा–भ्रम क्यों उत्पन्न किया जाय? निर्गुण राम की मानव शब्दों में बड़ाई भी उन्हें महान् से हीन ठहराना होगा।

बोलना का कहिये रे भाई,
बोलत बोलत तत नसाई,
बोलत बोलत बढ़े विकारा.....(क.ग्रं. पद 67)[1]

परन्तु यदि बोला नहीं जाय तो निर्गुण राम की कथा जैसे कही जायेगी? दूसरी बात है कि मानव अपने स्वभाव से विवश होकर बिना बोले चैन नहीं पा सकता है।[9] अतः, निर्गुण राम के संदर्भ में कुछ न कुछ बोलना ही है कुछ न कुछ सुनना ही है। तब कबीर के अनुसार उसकी चर्चा संतों और ज्ञानियों ही के साथ करनी चाहिये। यहीं हितकर भी है। (क.ग्रं. पद 67)

कबीर के हद के जीव सौं, हित करि मुखां न बोलि,
जे लागे बेहद सौं, तिन सौं अंतर खोलि। (क. ग्रं. 12 साखी 50)

ज्यों गूँगे के सैन को गूँगा ही पहिचान,
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को ज्ञानी होय सो जान। (हरिऔध, वचनावली 74)

ऐसा क्यों?क्योंकि धर्मभाषा का व्याकरण न तो साधारण भाषा का है, न विज्ञान का और न शुद्ध तर्कशास्त्र का। यही कारण है कि कबीर ने उलटबाँसियों की सहायता से अपने मत का प्रकाशन किया। धर्म–भाषा मिथकपरक होती है और इसका उद्देश्य रहता है कि मिथकों के द्वारा साधकों को परम तत्व के प्रति जागरूक कर दे। प्रत्येक धर्म मे परम तत्व का चित्रण किया जाता है जो किसी अमुक धर्म के अवलम्बियों के जन–मानस को छूता है। इसी चित्रण के संदर्भ में धर्म–कथायें प्रचलित होती हैं। ये मिथक और धर्म–कथायें परम तत्व को शब्दशः वर्णित करने में असमर्थ होती है, क्योंकि परम तत्व वर्णनातीत है; नयन–श्रवण अगोचर होता है। तब क्यों अबोल के संदर्भ में कुछ न कुछ कहा–सुना जाय?

'बोलन के सुख कारनैं, कहिये सिरजनहार' (रमैणी 34)

अपरंपार उपजै नहीं बिनसै, जुगति न जांनियै कथियै कैसे
जस कथिये तस होत नहीं, जस है तैसा सोइ,
कहत सुनत सुख उपजै, अरु परमारथ होइ। (चतुर्वेदी कृत रमैणी 11)

इसका कारण यह है कि इन कथाओं से साधकों में परम तत्व के प्रति उन्मेष होता है, साधक को नयी दृष्टि प्राप्त होगी, जिसके फलस्वरूप परम तत्व के संदर्भ में व्यापक आयाम का अवबोधन होता है। 'सजल नयन, पुलकित गात' होकर साधक आत्माराम में आत्मविभोर हो जाता है। यही है 'बोलन का सुख'। इसलिये अबोध के संदर्भ में बोलने का अभिप्राय है कि अकथ्य निर्गुण राम के प्रति जागरण हो और साधक को उसका अवबोधन हो। इसलिए धर्मभाषा न तो विश्लेषात्मक (अकारात्मक, रूपतामक,तार्किक प्रकथन) होती है और न संश्लेषणात्मक (वर्णनात्मक, विज्ञानपरक, तथ्यात्मक)ही होती है। धर्मभाषा उद्बोधक उन्मेषकारिणी तथा परम तत्व के प्रति जागरण हेतु हुआ करती है।

राम नाम ल्यौ लाई करि, चित चेतन ह्वै जागि। (चतुर्वेदी कृत क. ग्रं. 36 रमैनी)

(अर्थात् चित्त को चेताने और जागृत करने के लिये ही राम–नाम लिया जाता है।) अतः, पौराणिक कथाओं से साक्षात् रीति से निर्गुण राम के स्वरूप पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है, पर आत्माराम के अनुभव करने के लिये साधक प्रोत्साहित होता है।

है कोई राम नाम बतावै, बस्तु अगोचर मोहि लखावै।
राम नाम सब कोई बखानैं, राम नाम का मरम न जानैं,
ऊपर की मोहि बात न भावै, देखै गावैं तो सुख पावै,
कहै कबीर कछू कहत न आवै, परचै बिना मरम न पावै।। (क.ग्र.पद 218)

पौराणिक कथायें ऊपरी बातें है, पर इन कथाओं के सुनने–बोलने पर साधक आत्माराम का अनुभव करने लगता है। इस अनुभव में 'मैं' और 'तू', जीव और ब्रह्म का भेद दूर हो जाता है और दोनों का एकाकार हो जाता है। तब कौन किसका भेद बतावे ? कहीं भी कोई द्वैत नही रहा।

रही परदे में वह न परदेनशीं।

जो परदा–सा बीच में था, सो अब न रहा। यह है 'परचा'। अद्वैत वेदान्त के अनुसार 'ब्रह्मास्मि' का अनुभव हो जाता है और यही बात कबीर के साथ भी घटित होती है।

तीनि लोक मैं हमारा पसारा, आवागमन सब खेल हमारा,
हमहीं आप कबीर कहावा, हमहीं अपना आप लखावा।(क.ग्रं. पद 332)

इस प्रकार अखंडित वाक्य को अद्वैत वेदान्त में जहद–अजहल्लक्षणा कह जाता है।[10] जब साधक और परम साध्य निर्गुण राम एक हो जाते हैं तो इस अनुभूति को कबीर गूँगे के गुड़ के आस्वादन की उपमा देकर स्पष्ट करते हैं।

'निर्वाण वर्णनातीत है। राजा मिलिन्द के बार–बार पूछने पर भी भदन्त नागसेन मौन साधे रहे। बहुत आग्रह करने पर भदन्त ने कहा 'निर्वाणं शांतं'। इसी प्रकर बास्कलि ने निर्गुण ब्रह्म को लखाने के लिये 'मौन' धारण किया था। कबीर यह भी जोड़ते हैं कि असंतो और अज्ञानियों के सामने 'निर्गुण राम की कथा' नहीं करनी चाहिये। **मिलहि असंत मौन होय रहिये** (बीजक–कबीर, रमैनी 70) क्योंकि इस संदर्भ में 'बोलत बोलत बढ़ै विकारा'। पर क्या गूँगे की अनुभूति गूंगे तक ही आत्मनिष्ठ होकर सीमित हो जाती है? नहीं। उसमें मधुर मुस्कान की वह मूक–भाषा है जो परम तत्व की प्राप्ति का बोध कराती है।[11] अंतिम रूप से निर्गुण राम की भक्ति और साधना किसी विषय को जानने के लिए नहीं, वरन् स्वयं परम तत्व बनने और होने के लिये है। **'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'**

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल,
लाली देखन मैं गई मै भी हो गई लाल।
मेरा मन सुमिरै राम कूं मेरा मन रामहिं आहि,
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं, काहि। (क.ग्रं. 2 साखी 8)

यही भाव कबीर के साखी 5,9,10,35,13 में भी व्यक्त किया गया है। अंत में सुरति निरति में, जाप अजपाजाप में और साधक हरि में विलीन हो पूर्णगति को प्राप्त करता है। यही कबीर के लयवाद का अंतिम पाठ है।

————————————

संदर्भ –

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार भक्तों के भगवान् परिपूर्ण सर्वशक्ति सम्पन्न है। हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ0 88, फिर भागवत–पुराण 10.14, 6–7
2. ग्रह्मसूत्रभाष्य 4.3.10
3. उ0 4.422 मे कहा गया है कि ब्रह्म ह्रदय में वास करता है। सब को बश में रखने वाला और सब का अधिपति है। वह शुभ कार्य से बढ़ता नही और अशुभ कर्म से छोटा नही होता।
4. गंगाशरण शास्त्री, कबीर–सिद्धान्त–दर्शन, पृ0 13
5. कबीर–दर्शन, पृ0 91,102,148–149,157–158, 416, 417
6. रामजी ला सहायक, वही पृ0 151, 157
7. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ0 175
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. 111
9. Y. Masih, 'Shamkara's Universal Philosophy of Religion', PP. 22-24, अन बोलेते कैसे बनिहै, शब्दहि होई न विचारे, बीजक–कबीर, शब्द 9
10. कबीर इस वेदान्ती उक्ति की चर्चा करते हैं। तत् पद त्वं पद औश्र असी पद बाच लक्ष्छ पहिचाने। जहद लक्ष्छना अजहद कहते अजहद जहद बखाने। सतगुरु मिंल सत् शब्द लखावै सार शब्द बिलगावै। (हरिऔध शब्दवली 1)
11. विट्गिन्स्टाइन के भाषा–दर्शन में आत्मा निष्ठ भाषा पर प्रकाश डाला गया है। देखे– Private Language and the knowledge of other mind जिसे' Writtgenstine' ed Gadrge Potcher, Macmillan, London 1977 .

,

आर0डी0एस0 पी0 जी0 कालेज कुसॉव जौनपुर उ0 प्र0

————————————————————